नियमसार, १२५ पृष्ठ है। प्रवचनसार का श्लोक है। मुनि का अधिकार है। मुनि एषणासमिति से आहार ले, वह उनका व्यवहार है। उन्हें मुनि कहते हैं कि जिन्हें आत्मा का पहले ज्ञान, अनुभव हुआ हो। वीतरागमार्ग में व्यवहारचारित्र किसे होता है? – कि जिसे अन्दर आत्मा राग से, विकल्प से, अत्यन्त भिन्न; शरीर, वाणी, मन तो जड़ है, उनसे तो भिन्न है, परन्तु एक राग का दया, दान का विकल्प उठे, उससे चीज़ भिन्न है। ऐसा जिसे अन्तर में राग से और पर से अधिक अर्थात् भिन्न आत्मा जानने में आवे, अनुभव में आवे, उसे समकित कहने में आता है। प्रथम में प्रथम धर्म। तदुपरान्त यहाँ तो मुनि की बात है। अब मुनि कैसे होते हैं? २२७ गाथा का उद्धरण दिया है।

जिसका आत्मा एषणारहित है... क्या कहते हैं? यह आत्मा है, वह अनशन, अशन। आहार-पानी से रहित आत्मा है। अनशनस्वभावी आत्मा है। अर्थ में है? एषणारहित अर्थात् अनशनस्वभावी आत्मा, ऐसा। उसे एषणा-खोजना कि यह है, ऐसा उसके स्वरूप में नहीं है। आहार लेना या छोड़ना, वह वस्तु के स्वरूप में ही नहीं है क्योंकि आहार तो पुद्गल जड़ है। जड़ का लेना या छोड़ना, वह वस्तु के स्वरूप में नहीं है। वह तो

अनशनस्वभावी आत्मा को जाने। धर्मी जीव अपना आत्मा अनशन अर्थात् अशनरहित अनशनस्वभावी जाने। समकिती भी ऐसा जाने, परन्तु तदुपरान्त यहाँ विशेष बात मुनि की है।

आत्मा वस्तु है, वह ज्ञानानन्दस्वभाव से भरपूर तत्त्व है। यह अशन अर्थात् आहार-पानी, अशणं, पाणं, खाईमं, साईमं - आता है न सब ? इन सब चीज़ों से रहित आत्मा है। आत्मा में यह वस्तु, आहार-पानी, पुद्गल का तो अभाव है। मुनि उसे कहते हैं कि जिसका आत्मा एषणारहित है। यह आत्मा है आत्मा, वह तो आनन्द और ज्ञानस्वभावसहित है। उसमें आहार-पानी का तो अभाव है, वह तो जड़ है। आहार, अशरणं, पाणं, खाईमं, साईमं-कोई भी चीज़, उसका तो आत्म स्वभाव में अभाव है। धर्मी की दृष्टि उस अनशनरहित ऐसे आत्मा पर उसकी दृष्टि है। धर्मी की दृष्टि वह है। आहार ले या न ले, वह चीज़ आत्मा में नहीं है। आहाहा! क्योंकि जो चीज़ उसमें नहीं, उसे लेने-देने की बात कहाँ से होगी ? आहाहा! यह सम्यग्दृष्टि की पहली बात है। धर्मी पहले सम्यग्दृष्टि होता है, तब वह अपने आत्मा को... अशन तो पुद्गल, जड़, अजीव है। आत्मा तो अजीवरहित स्वभाववाला है। अनशनस्वभावी। अशन-अशन अर्थात् आहार-पानी, उनसे रहित, वह अनशन। अनशनस्वभावी आत्मा। आहाहा! जिसमें आहार-पानी का एक रजकण भी नहीं। ऐसा आत्मा धर्मी ने, सम्यग्दृष्टि ने, प्रथम धर्म की श्रेणीवाले जीव ने पहले ऐसा आत्मा जाना है कि आत्मा में आहार-पानी आदि वस्तु नहीं है।

(आहार की इच्छारहित है)। इस अपेक्षा से तो समकिती भी आहार की इच्छारहित है। समझ में आया ? अब यहाँ तो मुनि की विशेष बात है न ? मुनि को **(अनशनस्वभावी आत्मा को जानने के कारण स्वभाव से आहार की इच्छारहित है), उसे वह भी तप है;...** वह तप। मैं अनाहारी वस्तु हूँ। आहार की चीज़ मुझमें है ही नहीं, ऐसे आत्मा में दृष्टि और अनुभव में स्थिरता (होवे), उसे ही तप कहते हैं। समझ में आया ? वह उपवास है, ऐसा कहते हैं। लो, ठीक। मुनि आहार लेते हैं तथापि, विकल्प होने पर भी, दृष्टि में विकल्प और आहाररहित चीज़ मैं हूँ, ऐसी दृष्टि के कारण आत्मा अनाहारी, आहाररहित चीज़ है, ऐसी अनुभव में स्थिरता है, वह आहार करने पर भी और आहार का विकल्प होने पर भी वह उपवासी है। गजब काम।

क्योंकि आत्मा आहार-पानी रहित चीज़ है। उसके उप अर्थात् समीप में धर्मात्मा बसता है। आत्मा आनन्दमूर्ति ज्ञानस्वरूप, वह आहार-पानी की चीज़ पुद्गल से रहित है, ऐसी चीज़ में धर्मी की दृष्टि पड़ी है। धर्मी तो अपने शुद्ध आत्मा के उप अर्थात् समीप में बसता है, तो वही उपवास है - ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? और तदुपरान्त **उसे प्राप्त करने के लिए...** भगवान आत्मा अशन—आहार, पानी, मेवा आदि कोई भी चीज़ से रहित (आत्मा है), ऐसी दृष्टि हुई है, ऐसा आत्मा का अन्तरभान हुआ है और उसी आत्मा को प्राप्त करने हेतु प्रयत्नवान है। ऐसा अनशनस्वभावी आत्मा, पूर्ण **प्राप्त करने के लिए...** जिसका प्रयत्न है। है?

(और) उसे प्राप्त करने के लिये (अनशनस्वभावी आत्मा को परिपूर्णरूप से प्राप्त करने के लिये)... अर्थात् मुक्ति। जैसी आहार-पानीरहित चीज़ है, वैसा अनुभव दृष्टि में हुआ, परन्तु पूर्ण निर्मल ऐसी मुक्ति करने में उसका प्रयत्न है। **प्रयत्न करनेवाले ऐसे जो श्रमण, उन्हें अन्य (स्वरूप से भिन्न ऐसी) भिक्षा, एषणा बिना (एषणादोष रहित)...** तो मुनि आहार लेते हैं। उनके लिए चौका बनावे, आहार-पानी बनावे और ले, वे तो मुनि नहीं हैं। समझ में आया? उनके लिए गर्म पानी, आहार बनाया हो, उससे रहित लेते हैं। उनका दोष होवे तो वे लेते नहीं।

(एषणादोष रहित) होती है; इसलिए वे श्रमण अनाहारी हैं। देखो! जरा सूक्ष्म है। यह प्रवचनसार की गाथा है। यह नियमसार चलता है। भगवान आत्मा रजकण और राग के भाव से रहित है, ऐसी जिसे दृष्टि हुई और उस चीज़ को प्राप्त करने का स्वसन्मुख का प्रयत्न चालू है, तो वह आहार लेने पर भी... बाहर से तो व्यवहार से ऐसा कहे न? और आहार का विकल्प होने पर भी उसे अनाहारी कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा!

धर्मी को भी पहले से ऐसी भावना होनी चाहिए। मैं तो आत्मा एक रजकण और राग के अंश से रहित मैं हूँ। ऐसे आत्मा की जिसे दृष्टि (हुई है), आत्मा के समीप दृष्टि है, वह तो समकिती अनाहारी ही है परन्तु यहाँ तो मुनिपने की अनाहारी दशा लेना है, तो वह आहार लेते हैं तो एषणादोषरहित लेते हैं, इसलिए वे अनाहारी हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? समकिती दृष्टि अपेक्षा से अनाहारी हैं और मुनि स्थिरता की अपेक्षा से अनाहारी हैं - ऐसा सिद्ध करना है। ऐई! समझ में आया?

धर्मी जीव को अपना वस्तुस्वरूप, राग और रजकण कोई भी परमाणु से भिन्न अपनी चीज़ अनुभव में आयी है, इस अपेक्षा से सम्यग्दृष्टि भी अनाहारी है। उसे आहार नहीं है और इच्छा उत्पन्न होती है, वह भी उसकी चीज़ नहीं है। आहाहा! परन्तु सम्यग्दृष्टि को आहार का भाग लेने का राग तीव्र है, इस अपेक्षा से, स्थिरता की अपेक्षा से सम्यग्दृष्टि अनाहारी नहीं है। दृष्टि की अपेक्षा से अनाहारी है, चारित्र की अपेक्षा से अनाहारी नहीं है।

मुनि जो आत्मज्ञानी, ध्यानी, आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द में मस्त हैं, अतीन्द्रिय आनन्द का प्रचुर स्वसंवेदन जिन्हें प्रगट हुआ है। उन मुनि को तो, आहार-पानी की चीज़ मुझमें नहीं है परन्तु लेने का भाव है, उसमें एषणादोषरहित लेते हैं इसलिए साक्षात् अनाहारी हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह प्रवचनसार में कुन्दकुन्दाचार्यदेव महाराज का श्लोक है। दिगम्बर मुनि, सन्त... आहाहा! इस टीका में एक बोल अधिक लिया है। अमृतचन्द्राचार्य। कि जैसे मुनि अनाहारी हैं, वैसे मुनि अविहारी हैं। क्योंकि विहार करना, वह आत्मा का स्वभाव नहीं है। हिलना, चलना, गमन करना, वह आत्मा का स्वभाव नहीं है। ऐसी दृष्टि का ख्याल आया है कि मैं तो अविहारी हूँ। विहार करना, गति करना, गमन करना, वह तो मेरे स्वभाव में है ही नहीं। आहाहा! इस अपेक्षा से सम्यग्दृष्टि भी अविहारी है। समझ में आया? परन्तु मुनि तो साक्षात् अविहारी है क्योंकि विहार करने में ईर्यासमिति का दोष टालकर करते हैं, इतनी स्थिरता उसमें जमी है, इस अपेक्षा से मुनि को अविहारी कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा! मार्ग वह तो यह, बापू! अन्तर चैतन्यस्वरूप, जिसे पर का अवलम्बन ही नहीं। आहाहा! ऐसी चीज़...

कहते हैं कि आहार की इच्छा और आहार लेते हैं, तथापि अनशनस्वभावी की दृष्टि होने से और निर्दोष आहार लेने की भावना होने से अनाहारी हैं। इसी प्रकार अविहारी, विहाररहित आत्मा है, ऐसा जानने से और विहार में भी समितिसहित जानने से ईर्यासमिति का दोष बिल्कुल नहीं लगता; इस कारण मुनि को अविहारी कहा जाता है। समझ में आया? निश्चय से तो सम्यग्दृष्टि भी अविहारी है। आहाहा!

मुमुक्षु : आत्मा का स्वभाव ही जहाँ नहीं....

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वभाव ही नहीं। हलन-चलन करे, वह तो जड़ की क्रिया है। आहाहा! ऐसी बात है। समझ में आया?

इसी प्रकार (आचार्यवर) श्री गुणभद्रस्वामी ने (आत्मानुशासन में २२५ वें श्लोक द्वारा) कहा है कि — लो! गुणभद्रस्वामी मुनि, दिगम्बर सन्त हुए न? उन्होंने यह बात की है, लो!

यमनियमनितान्तः शान्तबाह्यान्तरात्मा,
परिणमितसमाधिः सर्वसत्त्वानुकम्पी।
विहितहितमिताशी क्लेशजालं समूलं,
दहति निहतनिद्रो निश्चिताध्यात्मसारः।।

श्लोकार्थ : आहाहा! **जिसने अध्यात्म के सार का निश्चय किया है;...** पहले समकित की बात करते हैं। आहाहा! मुनि ऐसे होते हैं कि जिन्हें पहले सम्यग्दर्शन हुआ होता है। सम्यग्दर्शन बिना मुनि नहीं होते। सम्यग्दर्शन में ऐसा निर्णय किया है। **अध्यात्म के सार का निश्चय किया है;...** ओहो! मैं तो राग का विकल्प, शरीर के रजकण, कर्म के रजकण से अत्यन्त रहित हूँ। मैं पूर्ण आनन्द और ज्ञान से पूर्ण भरपूर हूँ। मेरी चीज़ में राग और शरीर तो है नहीं परन्तु एक समय की पर्याय भी त्रिकाल में है नहीं। ऐसा सम्यग्दृष्टि ने पहले अपनी पूर्ण चीज़ का निर्णय किया है। आहाहा! समझ में आया?

भाषा क्या है? **अध्यात्म के सार का...** आहाहा! भगवान आत्मा धर्मी, सम्यग्दृष्टि होने से उसने अध्यात्म के सार का निर्णय किया है। तत्त्वार्थसार। कल आया था न? तत्त्व में सार, ऐसा आत्मतत्त्व। यहाँ अध्यात्म सार लिया है। अपना आत्मा, कहते हैं कि जो पुण्य-पाप के आस्रव हैं, उनसे रहित तो है ही और कर्म तथा शरीर से रहित है ही, परन्तु संवर-निर्जरा और मोक्ष जो तत्त्व है, वह भी पर्यायरूप तत्त्व है, उनसे भी द्रव्यतत्त्व भिन्न है। आहाहा!

जयपुर में मंगलाचरण में पहले यह कहा था। दस हजार लोग थे। स्वागत था न, बैशाख कृष्ण छह। दस हजार लोग। रामलीला मैदान। कहा, मार्ग यह है। दस हजार लोग थे। तत्त्व में सार तत्त्व... तत्त्व तो पुण्य-पाप के विकल्प वह तत्त्व है और संवर-निर्जरा और मोक्ष, वह निर्मल दशा, वह भी तत्त्व है। परन्तु उस तत्त्व में सारतत्त्व द्रव्यतत्त्व है। समझ में आया? ऐसी बात रह गयी है कि उसे अनन्त काल में ख्याल में आयी ही नहीं। यह नियमसार है न? इसकी ही गाथा यहाँ है न? ३८ में, ३९ में। शुद्धभाव अधिकार है न? लो, आया।

सर्व तत्त्वों में जो एक सार है... पृष्ठ ७८ है। ५४वाँ कलश **सर्व तत्त्वों में जो एक सार है, जो समस्त नष्ट होनेयोग्य भावों से दूर है...** ओहोहो! यह अध्यात्मसार। क्या कहते हैं? कि जीव, अजीव, पुण्य-पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा (बन्ध), मोक्ष, इन सब तत्त्वों में एक तत्त्व—जीवतत्त्व सार है। उन पर्याय तत्त्व से भी जीवद्रव्य तत्त्व सार है। संवर-निर्जरा मोक्षतत्त्व में भी जीवतत्त्व सार है। **जो समस्त नष्ट होनेयोग्य भावों से...** आहाहा! क्षायिकभाव, उपशमभाव, उदयभाव, क्षयोपशमभाव ये सब पर्यायें हैं। क्षायिकभाव भी पर्याय है। वह भी नाशवान है। **जो समस्त नष्ट होनेयोग्य भावों से दूर है...** कायम रहनेवाला तत्त्व भगवान है। समझ में आया? क्षायिक समकित की पर्याय, वह भी नष्ट होनेयोग्य है क्योंकि पर्याय है, एक समय की स्थिति है। उससे भी तत्त्व-आत्मा दूर है। प्रेमचन्दभाई! आहाहा! ऐसा भारी कठिन काम। देव-गुरु-शास्त्र से तो कहीं पार रह गया। उनसे उठा विकल्प, उससे भी पार, परन्तु यहाँ तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की दशा प्रगट हुई, अन्तर में स्वभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-शान्ति-चारित्र वीतरागता (प्रगट हुए), वह भी पर्याय है और वह पर्याय नष्ट होनेयोग्य है, तो नष्ट होनेयोग्य से दूर है। ध्रुवतत्त्व तो नष्ट होनेयोग्य से दूर है, वह आत्मतत्त्व है। आहाहा! समझ में आया? भाई! मार्ग तो यह है। कहा भाई! समझो, न समझो, तुम्हें यह करना ही होगा। बाहर से कुछ हाथ आवे, ऐसा नहीं है।

समस्त नष्ट होनेयोग्य भावों से दूर है... शुद्ध ज्ञान का अवतार और सुख-सागर की बाढ़ है। अकेला सुख-सागर और ज्ञान की अन्दर बाढ़ आवे, ऐसी वह तो चीज़ है। आहाहा! बाढ़ कहते हैं न? अन्तर में तो अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन की बाढ़ आती है, ऐसी वह चीज़ है। पर्याय आती है, वह नाशवान है, परन्तु जिसमें से आती है, वह महाध्रुव तत्त्व है, उस तत्त्व को यहाँ सार तत्त्व और अध्यात्म का सार, सम्यग्दर्शन का विषय कहते हैं। समझ में आया? लो!

जिसने अध्यात्म के सार का... मुनि ने पहले तो नव तत्त्व में सार तत्त्व एक आत्मा ध्रुव का निर्णय अनुभव किया हो, पश्चात् वे मुनि होने योग्य हैं। जिसे अभी सम्यग्दर्शन के निर्णय का ठिकाना नहीं, वह तो मुनि होने के योग्य ही नहीं है। आहाहा! **जिसने अध्यात्म के सार का निश्चय किया है; जो अत्यन्त यमनियमसहित है;...** अब उपरान्त। सम्यग्दर्शन उपरान्त अब। समझ में आया? आहाहा! प्रथम तो मैं ध्रुव नित्य आनन्द, एक

समय की पर्याय से भी दूर वर्तनेवाला, वीतरागी धर्मदशा से भी दूर वर्तनेवाला मैं आत्मा हूँ। ऐसा पहले अनुभव में निर्णय होना, उसका नाम प्रथम सम्यग्दर्शन कहते हैं। पहले सम्यग्दर्शन होता है, पश्चात् **अत्यन्त यमनियमसहित है;...** अब मुनि की बात आयी। ऐसे सम्यग्दर्शनसहित जो पंच महाव्रतादि नियमसहित है। अन्तर में स्वरूप में अतीन्द्रिय आनन्द की जिन्हें बाढ़ आयी हो। आहाहा! सिद्ध का आनन्द, सिद्ध परमात्मा का जो आनन्द, ऐसा ही आनन्द। उससे थोड़ा कम, परन्तु अत्यन्त अतीन्द्रिय आनन्द में ध्रुव में बहुत एकाग्रता हुई है, तो पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द आया है, तो अन्तर के निश्चय यम-नियमसहित है। व्यवहार में पंच महाव्रतादि का ऐसा विकल्प उठता है।

जिसका आत्मा, बाहर से और भीतर से शान्त हुआ है;... पर्याय में भी शान्ति और द्रव्य में भी शान्ति। वस्तु शान्त आनन्द प्रभु और पर्याय में भी शान्त अतीन्द्रिय आनन्द, उपशमरस, उपशमरस जिसकी पर्याय में ढल गया है, ऐसे मुनि। **जिसे समाधि परिणमित हुई है;...** देखो, **जिसे समाधि परिणमित हुई है;...** आनन्द की शान्ति समाधि... समाधि... समाधि...। आधि-व्याधि-उपाधि से रहित, वह समाधि है। आधि अर्थात् संकल्प-विकल्प; व्याधि अर्थात् शरीर का रोग आदि; उपाधि अर्थात् ये संयोग। आधि-व्याधि-उपाधि से रहित आत्मा के आनन्द की शान्ति की समाधि। आहाहा! वीतरागभावरूप जिसकी समाधि परिणमित हो गयी है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? उसे वीतरागमार्ग में मुनि कहने में आता है। आहाहा! उसे अन्तर में ऐसी समाधि परिणमित हो गयी है, बाहर में नग्नदशा हो और अभ्यन्तर में कदाचित् विकल्प आवे तो पंच महाव्रतादि का विकल्प हो। वह भी हेयबुद्धि से (आता है)।

जिसे समाधि परिणमित हुई है;... ओहोहो! गुणभद्रस्वामी दिगम्बर सन्त कहते हैं। सन्त की ऐसी दशा। 'सन्त निरन्तर चिन्तत ऐसे...' आता है न? अभी पूजा होती थी न। अभी बोलते थे। इसमें कहीं है। 'सन्त निरन्तर चिन्तत ऐसे...' मैं तो सदा निरन्तर। देहक्रिया, विकल्प-राग की क्रिया से रहित मैं सदा निरन्तर भिन्न हूँ। ऐसे सन्त स्वभाव में अपनी भावनारूप एकाग्रता करते हैं।

'आतम भावना भावतां जीव लहै...' यह आता है न? भावना अर्थात् यह। वे रटन ही रखे। 'आतम भावना भावतां जीव लहै केवलज्ञान' परन्तु आत्मा पर्याय और राग से

भिन्न ऐसी चीज़ की भावना का अर्थ इसमें एकाग्रता। ध्रुव भगवान में एकाग्रता, वह आत्मभावना, वह आत्मभावना भाते जीव लहे केवलज्ञान। उस स्वरूप में एकाग्रता से केवलज्ञान लेता है। अन्तर के स्वरूप की एकाग्रता। अतीन्द्रिय आनन्दधाम भगवान में एकाग्रता की वीतरागी दशा, वह भावना। भावना अर्थात् कोई कल्पना, चिन्तवना, या विकल्प, ऐसा नहीं। आत्मभाव की भावना। अत: आत्मभाव ध्रुव चिदानन्द आनन्दमूर्ति की भावना अर्थात् एकाग्रता। अर्थ की खबर नहीं होती और पहाड़े बोले जाते हैं। रटन (किये जाते हैं)। आतम भावना भावतां... परन्तु आत्मा किसे कहना? भावना किसे कहना? उसका फल केवलज्ञान किसे कहना? यह अपन नहीं जानते हैं।

जिसे समाधि... आनन्द... आनन्द... आनन्द की शान्ति। तीन कषाय के अभावरूप शान्ति... शान्ति... शान्ति...। आकुलता बहुत टल गयी है। अनाकुलता की समाधि। मुनि को पर्याय में शान्ति परिणमित हो गयी है। वीतरागता प्रगट हुई है। आहाहा!

जिसे सर्व जीवों के प्रति अनुकम्पा है;... एकेन्द्रिय पृथ्वी, अग्नि, वायु, वनस्पति से लेकर सब जीवों के प्रति अनुकम्पा। किसी को दु:ख देने का भाव नहीं। **जो विहित (शास्त्राज्ञा के अनुसार)...** वीतराग ने आज्ञा की है, वैसे निर्दोष आहार-पानी; उसके लिए बनाया हो, वह ले नहीं। प्राण जाए तो भी ले नहीं। **(शास्त्राज्ञा के अनुसार) हित-मित... हितकर और उचित मात्रा में।** मित और मर्यादित। **भोजन करनेवाला है;...** ऐसे सम्यग्दर्शन में आत्मा का निर्णय हुआ हो सार और पश्चात् समाधिरूप परिणमा और बाहर में अभ्यन्तर शान्तरूप है, अनुकम्पा है। वह शास्त्र की आज्ञा प्रमाण विहित-विधि से निर्दोष आहार पाने आदि हो तो हित और मित भोजन लेता है।

जिसने निद्रा का नाश किया है,... देखो! मुनि को निद्रा कैसी, कहते हैं। आहार जहाँ अल्प है, शान्ति जहाँ बहुत है। निद्रा का नाश किया है। एक अल्प निद्रा आती है, ऐसा कहते हैं। सच्चे मुनि हों उन्हें तो पौन सैकेण्ड की अन्दर निद्रा आवे। एक सैकेण्ड निद्रा आवे तो मुनिपना रहता नहीं। ऐसी दशा है। इस अपेक्षा से निद्रा का नाश किया, ऐसा कहा, भाई! यह दो घण्टे-चार घण्टे सोते हों, वे मुनि नहीं हैं। ऐई! गजब! समझ में आया? तीन काल में सन्त की व्याख्या यह है। तीनों काल के वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव के मार्ग में ऐसा मुनिपना है। भाषा देखो न, कैसी की है! स्वयं मुनि हैं।

जिसने निद्रा का नाश किया है,... पाठ है न, देखो न '**निहतनिद्रो**' इसका अर्थ ही यह है। बहुत अल्प, रात्रि के अन्तिम भाग में। छहढाला में आता है न? 'पिछली रयनि'... छहढाला, दौलतराम (जी कृत)। पिछली रात्रि के चौथे पहर में जरा एक करवट बदले ऐसी की ऐसी पौन सैकेण्ड में निद्रा ले। फिर अप्रमत्तदशा हो जाए। छठा गुणस्थान हो, वहाँ तक थोड़ी निद्रा जरा आ जाती है। एकदम सातवें गुणस्थान में। फिर छठा, फिर सातवाँ - इस अपेक्षा से मुनि ने निद्रा का नाश किया है, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! कहो, समझ में आया? यह गृहस्थ तो रात्रि में आठ बजे सोवे और सवेरे छह बजे उठे। चाय-पानी का समय हो, तब सवेरे उठे। नौ बजे। जल्दी सोवे, जल्दी जागे वीर-ऐसे शब्द पहले आते थे। नहीं? ऐसा आता था हमारे उमराला में। यह हमारे यहाँ उमराला में ही था। उमराला में पाणीयारू था, उस पणीयारो पर एक कागज था, तब की बात है, यह तो ७० वर्ष पहले की (बात है)। हमारे दीपचन्दभाई थे, वे बहुत होशियार थे। वे बड़े भाई थे। वे सब बहुत... पाणीयारा पर एक ऐसा कागज था। तब की बात है। जल्दी उठे वह वीर। यह तो गृहस्थाश्रम की बात है। मुनि को जल्दी-देरी से सोने का है ही नहीं। आहाहा!

यहाँ तो स्वयं मुनि गुणभद्राचार्य दिगम्बर सन्त, स्वयं की व्याख्या करते हुए ऐसा कहते हैं। मुनि को निद्रा का नाश हुआ। आहाहा! जिन्हें तीन कषाय का अभाव हुआ है— अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानी, प्रत्याख्यानी का नाश हो गया है। एक कषाय जरा... संज्वलन की अल्प कषाय है। महाव्रत का विकल्प आदि कषायभाव है। आहाहा! **जिसने निद्रा का नाश किया है,...** देखो! मुनि कैसी बात करते हैं! स्वयं करते हैं। यह अल्प निद्रा जरा होती है, इसका अर्थ गिनती नहीं, ऐसा कहते हैं। जगत के प्राणी निद्रा लेते हैं, वैसी निद्रा इन्हें (मुनि को) होती नहीं।

मुमुक्षु : नींद की गोलियाँ लें।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो तुम्हारे सब व्यापार का धन्धा ठीक न हो, वह ले। नींद की गोली ले। बात सत्य है।

मुमुक्षु : ऐसा कहते हैं, गृहस्थ भी आज तो सोते नहीं, गोली रखते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो उपाधि के कारण उसे नींद नहीं आती। यह तो समाधि इतनी प्रगटी है कि जिन्हें निद्रा नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : व्यापारी है, वह तो गोली का बेचनेवाला।

पूज्य गुरुदेवश्री : है न? ऐसी गोली रखते होंगे? आहाहा!

वह (मुनि) क्लेशजाल को समूल जला देता है। आहाहा! कषाय के अंश को तो जलाकर राख कर डालता है। आहाहा! उसे यहाँ मुनि कहा जाता है। यह मुनिपना है। वहाँ (श्वेताम्बर में) कहते हैं गृहस्थाश्रम में हो गया केवलज्ञान। कैसा? कर्मापुत्र। श्वेताम्बर में आता है। गृहस्थाश्रम में केवलज्ञान हो गया।

मुमुक्षु : भरत महाराज को हुआ, फिर इसे न हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : भरत महाराज को कुछ हुआ नहीं। नग्न हुए पश्चात् मुनिपना आया है। नग्नदशा बिना अन्तर से मुनिपना प्रगट ही नहीं होता, और अकेला नग्नपना हो, उसे मुनिपना होता नहीं। अन्तरदशा के भान अनुभव बिना, वीतरागता बिना मुनिपना नहीं हो सकता। कर्मापुत्र केवली था, माँ-बाप के कारण गृहस्थाश्रम में रहा। लोग सब्जी लाये, छुरी नहीं मिलती थी। केवली ने कहा, एक छुरी कोठी के पीछे है। कहो, ये कोई बातें... ऐसे केवलज्ञानी? श्वेताम्बर में यह बात है।

मुमुक्षु : फिर परीक्षा में....

पूज्य गुरुदेवश्री : पढ़ने में उसकी परीक्षा ले। उसकी टीका की थी। बहुत वर्ष की बात है। हम भावनगर थे। (संवत्) १९७७ के बाद १९८३। वह बेरिस्टर नहीं था? कोई खुशाल। उसने टीका की थी। १९७३ के वर्ष में हम मुम्बई से भावनगर आये थे तब। कि ऐसे केवली सिद्ध किये हैं कोई गप्प मारी है या नहीं? कुछ विचार नहीं करते? यह कुँवरजीभाई ने मुझे कहा। कुँवरजी आनन्दजी उनने लिखा परन्तु यह विचार तो करो। केवलज्ञानी गृहस्थाश्रम में रहे और वह छुरी बतावे, सब्जी को काटने के लिए चाहिए थी। क्या कहते हो तुम यह?

मुनि किसे कहे, बापू! वे तो वन में बसनेवाले, वन के बाघ। आहाहा! जिन्हें वस्त्र का एक टुकड़ा नहीं होता। और समाधि... समाधि... समाधि... आनन्द में लवलीन। उन्हें कहते हैं कि क्लेशजाल का तो नाश कर देते हैं। आहाहा! शान्ति.. शान्ति.. शान्ति..

श्लोक-८६

और ६३ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:—

(शालिनी)

भुक्त्वा भक्तं भक्तहस्ताग्रदत्तं ध्यात्वात्मानं पूर्णबोधप्रकाशम्।
तप्त्वा चैवं सत्तपः सत्तपस्वी प्राप्नोतीद्धां मुक्तिवाराङ्गनां सः ।।८६।।

(हरिगीतिका)

भक्त ने हस्ताग्र से भोजन दिया वह ग्रहण कर।
पूर्ण ज्ञान प्रकाशमय निज आत्मा का ध्यान कर॥
इस तरह सम्यक् तपों को तपे जो सत् तपस्वी।
मुक्तिमय वारांगना दैदीप्यमान लहे सही॥

[श्लोकार्थः—] भक्त के हस्ताग्र से (हाथ की उङ्गलियों से) दिया गया भोजन लेकर, पूर्ण ज्ञानप्रकाशवाले आत्मा का ध्यान करके, इस प्रकार सत् तप को (सम्यक् तप को) तपकर, वह सत् तपस्वी (सच्चा तपस्वी) दैदीप्यमान मुक्तिवाराङ्गना को (मुक्तिरूपी स्त्री को) प्राप्त करता है।

श्लोक-८६ पर प्रवचन

लो! **और ६३ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं—** पद्मप्रभमलधारिदेव। ८६ कलश है न? ८६

भुक्त्वा भक्तं भक्तहस्ताग्रदत्तं ध्यात्वात्मानं पूर्णबोधप्रकाशम्।
तप्त्वा चैवं सत्तपः सत्तपस्वी प्राप्नोतीद्धां मुक्तिवाराङ्गनां सः ।।८६।।

कहते हैं कि धर्मात्मा सन्त वीतराग के मार्ग में ऐसे सन्त होते हैं, उसकी पहले समझ, श्रद्धा तो करनी पड़ेगी या नहीं? जिसे-तिसे साधु माने और जिसे-तिसे गुरु माने, (वह) मिथ्यात्व में पड़ा है, कहते हैं। आहाहा!

श्लोकार्थ : भक्त के हस्ताग्र से (हाथ की उङ्गलियों से) दिया गया भोजन लेकर,... देखो! आत्मज्ञानी शान्ति समाधि में झूलते हैं और भिक्षा लेने जाते हैं वहाँ, **भक्त के हस्ताग्र से...** ऐसा लिया। जैसे-तैसे के घर में नहीं। गुणधारी श्रावक हो, भक्त हो वहाँ आहार लें, ऐसा कहते हैं। यह पहले आ गया है न? आठ गुणसहित। आठ गुण आ गया। श्रावक के आठ गुणसहित। जैन सच्चे श्रावक हों और भक्ति करनेवाले। भक्ति। जबरदस्ती दे या ऐसा करे, ऐसा नहीं। **भक्त के हस्ताग्र से...** दो बात। एक तो धर्मात्मा का भक्त हो और हस्ताग्र से-हाथ से। दूसरे को हुकम करे, ऐसा नहीं। लो, महाराज पधारे हैं, आहार दो, ऐसा नहीं। वे वहाँ आते ही नहीं। वह तो पधारो... पधारो... पधारो... ऐसे मान से... यह तो मुनि परमेश्वर हैं। अन्तर आनन्द में कल्लोल करते हैं। आहाहा! आहार का एक विकल्प आया, वह भी विकल्प का स्वामी और आहार लेने का स्वामी नहीं। उसके ज्ञाता-दृष्टा हैं। देखो! यह वीतराग के मुनि। आहाहा! यह साधुपना।

भोजन लेकर **दिया गया भोजन लेकर,...** देखा न? **(हाथ की उङ्गलियों से)...** वापस ऐसा। ऐसे हाथ से देते हैं न? हाथ की अंगुलियों से देते हैं। ऐसे हाथ में देते हैं। **पूर्ण ज्ञानप्रकाशवाले आत्मा का ध्यान करके,...** देखो! बाहर बात ली है जरा आहार की। भगवान आत्मा पूर्ण ज्ञान का पिण्ड प्रभु, उसका ध्यान करके, उसके आनन्द का ध्यान करके। आहाहा! पूर्ण ज्ञानप्रकाशवाला आत्मा—द्रव्य लिया। द्रव्य-द्रव्यवस्तु। ध्रुव नित्यानन्द प्रभु। **पूर्ण ज्ञानप्रकाशवाले आत्मा...** आहाहा! पर्याय में तो अपूर्ण ज्ञान है। पूर्ण त्रिकाल है, ऐसा पूर्ण स्वभाव भगवान का ध्यान-निजस्वरूप का ध्यान। यहाँ तो यह कहते हैं, देखो!

यान करके, इस प्रकार सत् तप को (सम्यक् तप को) तपकर,... लो, यह सत् तप। यह सम्यक् तप। सच्चा मुनिपना। आहाहा! आत्मा पूर्ण ज्ञानप्रकाश का पिण्ड है, उसमें एकाग्रता, ध्यान करना, वही सत् तप है, वही मुनिपना है, ऐसा कहते हैं। अन्दर शब्द है? देखो! **इस प्रकार सत् तप को (सम्यक् तप को) तपकर,...** इस प्रकार अर्थात्? ज्ञानप्रकाश ऐसा भगवान आत्मा नित्यानन्द प्रभु का ध्यान करके। देखो! देव-गुरु का नहीं, राग का नहीं, एक समय की पर्याय का ध्यान नहीं। समझ में आया? परमेश्वर का मार्ग, वीतराग का मार्ग अनादि-अनन्त सत्यमार्ग ऐसा है। इस प्रकार से अपना भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञान और पूर्ण शान्ति आदि, ऐसा तत्त्व भगवान का अन्तरध्यान, उसे

ध्येय करके पूर्ण ज्ञानस्वरूप आत्मा को ध्येय करके ध्यान करता है, वह सत् तपस्वी है, वह सच्चा तपस्वी है, ऐसा कहते हैं।

इस प्रकार सत् तप को (सम्यक् तप को) तपकर,... यह सत् तप। दो, पाँच, दस, पच्चीस अपवास-वपवास करे, उसे आत्मा का भान नहीं। वह तो अज्ञान मूखाई से भरपूर तप है। बालतप और बालव्रत (है)। समझ में आया? **वह सत् तपस्वी...** देखो भाषा। वह सच्चा तपस्वी है। सच्चा तपस्वी है। मात्र आहार छोड़ा, पानी छोड़ा और तपस्वी हो गया, ऐसा नहीं। वह तपस्वी नहीं। यह तो सच्चा तपस्वी उसे कहते हैं, ऐसा कहते हैं। वे (बाकी) सब खोटे तपस्वी। आहाहा! जो आत्मा के अन्तर पूर्ण स्वरूप के ध्यान में उसे ध्येय करके पड़ा है, वह सच्चा तपस्वी है। आहाहा! तपस्वी अर्थात् सच्चा मुनि, ऐसा। तप अर्थात् मुनिपना गिना है न? भगवान का तपकल्याणक नहीं? तपकल्याणक कहो या मुनिपना कहो। यह सच्चा मुनिपना, सच्चा मुनिपना यह है, ऐसा कहते हैं।

ऐसे **दैदीप्यमान मुक्तिवाराङ्गना को...** आहाहा! पूर्णानन्द प्रभु ऐसे आत्मा को ध्येय बनाकर ध्यान में लिया, विषय किया, अपने सम्यग्ज्ञान में ध्रुव को विषय बनाया और ध्यान किया। ऐसे ध्यानी मुनि **दैदीप्यमान मुक्तिवाराङ्गना को (मुक्तिरूपी स्त्री को) प्राप्त करता है।** लो। यह केवलज्ञानरूपी दैदीप्यमान शोभित मुक्ति, ऐसी वारांगना अर्थात् स्त्री, मुक्तिरूपी स्त्री को प्राप्त करते हैं। आहाहा! भाषा ही... कहो, ऐसे सच्चे मुनि को **दैदीप्यमान मुक्तिवाराङ्गना...** केवलज्ञान, अनन्त आनन्द ऐसी मुक्तिरूपी स्त्री, उसे ऐसे सच्चे ध्यानी, आत्मा का ध्यान करनेवाले ध्यानी मुक्ति प्राप्त करते हैं। कहो, समझ में आया? यह पहले व्यवहार लिया परन्तु ध्यान तो इसका करते हैं। आहार लिए हस्ताग्र से परन्तु ध्यान तो यहाँ का यहाँ है। वहाँ नहीं कि आहार लेना है और अमुक है और... आहाहा! यह ६३ गाथा हुई।

गाथा-६४

तथाहि ह्न

पोत्थइकमंडलाइं गहणविसग्गेसु पयतपरिणामो।
आदावण-णिक्खेवण-समिदी होदि त्ति णिद्दिट्ठा।।६४।।

पुस्तक-कमण्डलादिग्रहणविसर्गयोः प्रयत्नपरिणामः।
आदान-निक्षेपण-समितिर्भवतीति निर्दिष्टाः।।६४।।

अत्रादाननिक्षेपणसमितिस्वरूपमुक्तम्। अपहृतसंयमिनां संयमज्ञानाद्युपकरणग्रहण-विसर्गसमयसमुद्भवसमितिप्रकारोक्तिरियम्। उपेक्षासंयमिनां न पुस्तककमण्डलुप्रभृतयः, अतस्ते परमजिनमुनयः एकान्ततो निष्पृहाः, अत एव बाह्योपकरणनिर्मुक्ताः। अभ्यन्तरोपकरणं निजपरम-तत्त्वप्रकाशदक्षं निरुपाधिस्वरूपसहजज्ञानमन्तरेण न किमप्युपादेयमस्ति। अपहृतसंयमधराणां परमागमार्थस्य पुनः पुनः प्रत्यभिज्ञानकारणं पुस्तकं ज्ञानोपकरणमिति यावत्, शौचोपकरणं च कायविशुद्धिहेतुः कमण्डलुः, संयमोपकरणहेतुः पिच्छः। एतेषां ग्रहणविसर्गयोः समयसमुद्भव-प्रयत्नपरिणामविशुद्धिरेव हि आदाननिक्षेपणसमितिरिति निर्दिष्टेति।

पुस्तक कमण्डल आदि निक्षेपणग्रहण करते यती।
होता प्रयत परिणाम वह, आदाननिक्षेपण समिति॥ ६४॥

गाथार्थ :—[पुस्तककमण्डलादिग्रहणविसर्गयोः] पुस्तक, कमण्डल आदि लेने-रखने सम्बन्धी [प्रयत्नपरिणामः] प्रयत्नपरिणाम, वह [आदाननिक्षेपणसमितिः] आदान-निक्षेपणसमिति [भवति] है [इति निर्दिष्टा]—ऐसा कहा है।

टीका :—यहाँ आदान निक्षेपणसमिति का स्वरूप कहा है।

यह, अपहृतसंयमियों[१] को संयमज्ञानादिक के उपकरण लेते-रखते समय

---

१. अपहृतसंयमी = अपहृतसंयमवाले मुनि। (अपवाद, व्यवहारनय, एकदेशपरित्याग, अपहृतसंयम, हीन-न्यूनतावाला संयम), सरागचारित्र और शुभोपयोग - ये सब एकार्थ हैं।

उत्पन्न होनेवाली समिति का प्रकार कहा है। उपेक्षासंयमियों[१] को पुस्तक, कमण्डल आदि नहीं होते; वे परमजिनमुनि एकान्त में (सर्वथा) निस्पृह होते हैं; इसीलिए वे बाह्य उपकरणरहित होते हैं। अभ्यन्तर उपकरणभूत, निज परमतत्त्व को प्रकाशित करने में चतुर ऐसा जो निरुपाधिस्वरूप सहज ज्ञान, उसके अतिरिक्त अन्य कुछ उन्हें उपादेय नहीं है। अपहृतसंयमधरों को परमागम के अर्थ का पुनः पुनः प्रत्यभिज्ञान होने में कारणभूत ऐसी पुस्तक, वह ज्ञान का उपकरण है; शौच का उपकरण कायविशुद्धि के हेतुभूत कमण्डल है; संयम का उपकरण-हेतु पींछी है। इन उपकरणों को लेते-रखते समय उत्पन्न होनेवाली प्रयत्नपरिणामरूप विशुद्धि ही आदाननिक्षेपणसमिति है – ऐसा (शास्त्र में) कहा है।

गाथा-६४ पर प्रवचन

मुनि की आदाननिक्षेपणसमिति कहते हैं। मुनि ले-रखे क्या? व्यवहार से, हों! उसकी व्याख्या है।

पोत्थइकमंडलाइं गहणविसग्गेसु पयतपरिणामो।
आदावण-णिक्खेवण-समिदी होदि त्ति णिद्दिट्ठा।।६४।।

पुस्तक कमण्डल आदि निक्षेपणग्रहण करते यती।
होता प्रयत परिणाम वह, आदाननिक्षेपण समिति॥ ६४॥

ऐसा निदिष्ठान कहा न! भगवान ने ऐसा कहा है। आगम में ऐसा कहा है।

टीका : यहाँ आदान निक्षेपणसमिति का स्वरूप कहा है। यह, अपहृतसंयमियों को संयमज्ञानादिक के उपकरण लेते-रखते समय... व्यवहारसंयमी की बात है। जिसे विकल्प उठा है। आत्मा के अनुभवसहित अन्दर शान्ति तो है, परन्तु शुभराग विकल्प उठा है, उसे अपहृतसंयमी कहते हैं। अपवादी संयमी। नीचे है न, **अपहृतसंयमवाले मुनि। (अपवाद, व्यवहारनय, एकदेशपरित्याग, अपहृतसंयम, हीन-न्यूनतावाला संयम),**

१. उपेक्षासंयमी = उपेक्षासंयमवाले मुनि। (उत्सर्ग, निश्चयनय, सर्व परित्याग, उपेक्षासंयम, वीतरागचारित्र और शुद्धोपयोग – ये सब एकार्थ हैं।)

सरागचारित्र और शुभोपयोग – ये सब एकार्थ हैं। देखो! अब यहाँ विशिष्टता क्या कहते हैं? कि मुनि को तीन कषाय का अभाव तो है और अनुभव सम्यग्दर्शन तो साथ में है ही। अब उन्हें शुभभाव का विकल्प आता है, उसे व्यवहारसंयमी कहा है। ऐसा निश्चय तो है। भाई! वह व्यवहार अर्थात् सम्यग्दर्शन और शान्ति नहीं है, और यह व्यवहार है, उसकी बात यहाँ है ही नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : छठवें वाले को अपहृतसंयमी कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, छठवें गुणस्थानवाला अपहृत सराग संयमी व्यवहारनय का संयमी, आस्रववाला संयमी कहने में आया है। आहाहा! वापस आत्मज्ञान नहीं, अनुभव नहीं, शान्ति नहीं, तीन कषाय का अभाव नहीं, वह व्यवहार, उस व्यवहार को व्यवहार कहते ही नहीं। वह तो अज्ञानी है। आहाहा! राग के विकल्प का कर्ता होता है, वह तो मिथ्यादृष्टि है। उसे व्यवहार कैसा? यहाँ तो अपहृतसंयमी को अर्थात् कि जो शुभोपयोग में आया है। मैं चीज़ को लेने-रखने के भाव में यत्न करता है, ऐसे शुभराग से, अन्तर में तीन कषाय की निरागी दशा है, ऐसे साधु को जो विकल्प आया है, उसे अपहृतसंयमी कहते हैं। आहाहा! देखो न! कैसा स्पष्टीकरण किया है!

संयमज्ञानादिक के उपकरण लेते-रखते समय... देखो! संयम और ज्ञान है तो सही। अन्तर का संयम भी है और अन्तर सम्यग्ज्ञान भी है। उसके **उपकरण लेते-रखते समय उत्पन्न होनेवाली समिति का प्रकार कहा है।** लो! उसे पुस्तकादि लेने-रखने में। वह उपकरण है न? **पुस्तक, कमण्डल आदि...** यह उपकरण की बात है। जिसे अपना शुद्ध अनुभव सम्यग्दर्शन है और जिसे संयम और ज्ञान अन्तर परिणमित हुआ है, उसे जब छठवें गुणस्थान में शुभराग आता है। लेने-रखने की चीज़ को, पुस्तक लेना-रखना। वह क्रिया तो जड़ की है, परन्तु शुभभाव का विकल्प उठता है, उस शुभभाववाले जीव को सरागसंयमी, व्यवहारनय के संयमी, अपहृतसंयमी, अपवादीसंयमी, एकदेशपरित्याग (कहते हैं)। देखो! अशुभराग छूटा है, शुभराग छूटा नहीं है तो एकदेशपरित्याग है। आहाहा!

पंचम गुणस्थान में एकदेशपरित्याग और यह एकदेशपरित्याग, दोनों में अन्तर है, भाई! आहाहा! सम्यग्दृष्टि श्रावक आत्मा का अनुभवी है। उसमें एकदेश राग का त्याग है, तो वह एकदेशसंयमी कहलाता है। यह दूसरी चीज़ है। यहाँ तो सातवीं भूमिका का

(गुणस्थान का) अभाव है। सर्व राग के अभावरूप निर्विकल्प उपयोग का अभाव है और अशुभराग गया और शुभराग में आया, तो उसे एकदेशत्यागी कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया?

(एकदेशपरित्याग, अपहृतसंयम, हीन-न्यूनतावाला संयम)... छठे गुणस्थान में... बाह्य में नग्नदशा। समझ में आया? अभ्यन्तर में दर्शन-ज्ञान और चारित्र प्रगट हुआ है, परन्तु पूर्ण शुद्ध निर्विकल्प उपयोगरूप चारित्र नहीं तो उसे यहाँ न्यून-हीन संयम कहा है। आहाहा! **सरागचारित्र...** आहाहा! क्या करे? यहाँ तो अन्तर आत्मा का अनुभव और अन्दर स्थिरता-शान्ति तो है, उसमें सप्तम गुणस्थानयोग्य निर्विकल्प उपयोग नहीं और रागभाग है तो एकदेशत्याग कहा। यह बात है। पक्ष से बात करे तो नहीं जँचे, भाई! यह तो वस्तु का स्वभाव ऐसा है। आहाहा!

जिसे सम्यग्दर्शन, आत्म-अनुभव नहीं है और राग का कर्ता होता है, उसे व्यवहार कहाँ से आया? निश्चय का भान नहीं, वहाँ तो व्यवहार ही नहीं है, उसे तो सरागसंयमी भी नहीं कहते। आहाहा! वह तो मिथ्यादृष्टि असंयमी है। यहाँ तो आत्मा के आनन्द का अनुभव है और शान्ति, समाधि, तीन कषाय के अभावरूप परिणमित हुई है, परन्तु निर्विकल्प शुद्ध उपयोग में जमे नहीं तो शुभराग आया, उसे न्यून संयमी, सरागसंयमी, शुभ उपयोगवाला संयमी कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? है तो वह हेय, परन्तु आये बिना नहीं रहता। पहले, छठवें गुणस्थान में आता है, ऐई! यह तो छठे गुणस्थानवाले को ही व्यवहार कहा। वे कहते हैं न, व्यवहार पहले और निश्चय बाद में, भाई! आता है न? उसका अर्थ यह। छठे गुणस्थानवाले को शुभ उपयोग आया है, वह व्यवहार है। पश्चात् अभाव करके सातवें में जाएगा। मिथ्यादृष्टि को पहले व्यवहार और पश्चात् समकित हो, यह बात ही कहाँ है? कैसे संयमी मुनि... यह समिति का प्रकार कहा, उसे व्यवहारसमिति, लेने-छोड़ने का विकल्प ऐसा होता है, यह बात की। उपेक्षासंयमी अब कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)